Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities ISSN: 0975-9891
Vol. 12, (2017) 157-160
DOI: 10.51220/hjssh.v12i1.28

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण

वीर राघव खण्डूड़ी[1]
[1]संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय उत्तरकाशी

*Corresponding Author Email: vrkhanduri@gmail.com

Received: 04.11.2017; Revised: 21.11.2017; Accepted: 27.12.2017
©Society for Himalayan Action Research and Development

सारांश: प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृत साहित्य में वर्णित पर्यावरण के विभिन्न आयामों का सन्दर्भ ग्रहण करते हुए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर विवेचना प्रस्तुत की गई है।

कुंजी शब्द: आवरण, प्रावलम्बी, अवछिन्न, अदिति, अवांछित, प्राकृत, स्थावर

प्रस्तावना:

वैदिक काल से लेकर आजतक मानव पर्यावरण के लिए चिन्तित रहा है। उसे सन्तुलित करने के लिए समयानुसार प्रयास भी करता रहा है। पर्यावरण व्यापकता भरा शब्द है, यह उन सम्पूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है। जो मानव जीवन को प्रावृत करती है तथा क्रियाकलापों को अनुशासित करती है। हमारे चारों ओर जो विराट परिवेश व्याप्त है ऐसे प्रावलम्बी सम्बन्ध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं, परिस्थितियां तथा शक्तियां विद्यमान है वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करते हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती है।इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते है। यह दायरा व्यक्ति, गांव , नगर, प्रदेश महाद्वीप, विश्व अथवा सम्पूर्ण सौरमण्डल या बह्मण्ड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनुष्यों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक समस्त परिवेश के लिए प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना की है –**द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष**' ।[1]इसीलिए वैदिक काल से लेकर आज तक चिन्तकों तथा मनीषियों द्वारा समय–समय पर पर्यावरण के प्रति अपनी चिन्ता को अभिव्यक्त कर मानव जाति को सचेष्ट करते रहे।

पर्यावरण शब्द से तात्पर्य परि + आवरण अर्थात जिसका शाब्दिक अर्थ संस्कृत के आधार पर अच्छी तरह चारों आच्छादन आदि के रूप में मिलता है। आङ् भी संस्कृत का उपसर्ग है जिसका अर्थ समीप, सम्मुख तथा चारों ओर होता है। परि आङ् व्याकरण में चौबीस उपसर्गों में आते हैं। चारों ओर आवरण का अर्थ ढकना, छिपना, घेरना, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल होता है।[2] अतएव वैज्ञानिक कोषकारों ने इसका अर्थ पास–पड़ोस की परिस्थितियां और उनके रूप में माना है। डॉ. रघुवीर ने सर्वप्रथम तकनीकी शब्दकोष निर्माण के साथ 'इन्वायरमेन्ट' फेन्च भौतिक शब्द का प्रयोग किया। वे ही इसके प्रथम प्रयोक्ता है।[3] वास्तव में पर्यावरण शब्द अधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेष्ट हीकल द्वारा इकोलॉजी शब्द का प्रयोग सन् 1861 में किया गया जो ग्रीक भाषा के ओइकोश (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्घृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूप में इन्वायरमेंन्ट शब्द से प्रचलित हुआ। इसके कई अर्थ हैं जैसे–वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति प्रभाव परिवर्तन तथा वायुमण्डल परिवेश अड़ोस – पड़ोस , ईर्द–गिर्द, आस–पास पर्यावरण आदि।

पर्यावरण ज्ञान के लिए यह समझना अति आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम और किस प्रकार हुई उसके कौन–कौन से तत्व कारण हैं तभी पर्यावरण के समस्त आवरणों को दूर किया जा सकता है। वैदिक मनीषियों ने सर्वप्रथम पर्यावरण पर सर्वप्रथम के चिन्तन , मनन करते हुए सृष्टि को प्रारम्भ अवस्था में जिस प्रकार देखा उसका वर्णन ऋगवेद की ऋचाओं में इस प्रकार किया है–**नासदासीनों सदासीतदानी.**[4]. संसार में पहले न सद् न असद् था केवल जल ही जल विद्यमान था। इसके हिरण्यगर्भ रूपी ईश्वर ही सर्वप्रथम प्रकट हुए। ''

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे'' ।[5] तभी संसार अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का धीरे–धीरे अवछिन्न विकास हुआ। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है कण, प्रतिकण, एवं विकरण । चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय वैदिक सिद्वान्त के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग '' **त्रयःकृण्वति भूवनस्यरेता''**[6]विद्यमान है । वरूण , मित्र तथा अर्यमा इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है जो अनादि एवं अखण्ड सत्ता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत का विकास ही पर्यावण प्रादुर्भाव है। सृष्टि का जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्य सम्बन्ध है, इसीलिए आदिकाल से मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्य, सुस्वास्थ्य, जीवनशक्ति, पशु, कीर्तिधन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके यही कामना अथर्ववेद में ऋषियों ने की है– '**आयुः प्राणप्रजापशु''**[7] और आगे भी यही कामना की गई **हैशतं जीवेम शरदाः**[8]**.** सभी सौ वर्ष तक जीवित रहें, सौ वर्ष तक सुनें, देखने रहें, आयुभर किसी के पराधीन न रहें ।[9]. सन्तान एवं धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए बाहर से शुद्व अन्दर से पवित्र तथा निरन्तर यज्ञ करने वाले होवें। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग का आचरण करें जिससे आयु में वृद्वि की प्राप्ति हेाती है।[10] दीर्घआयु की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन में श्रेष्ठ सदगुण बढाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अन्दर बढाना चाहिए । प्राण शक्ति के साथ आत्मिक बल धारण करने वाले नृत्य के वश में नही जाते।[11] इसलिए वेद की उपर्युक्त शाश्वत भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्वि एवं सुस्वास्थ्य मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

पर्यावरण क्या है यह प्रश्न सभी को व्यथित करता रहता है। आकाश, अन्तरिक्ष , पृथ्वी एवं उसके सभी घटक जल औषधियां , वनस्पतियां , सम्पूर्ण संसाधन एवं ज्ञान संतुलन अवस्था में रहे तभी व्यक्ति और विश्व शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति में जो कुछ हमको परिलक्षित होता है सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रक्षा करते है। जैसे – जल, वायु, मृदा ,पादप और प्राणी आदि । अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही संसाधनों का भंडार है।

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित किया है साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणी महत्व को भी भलीभांति स्वीकार किया है। उन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण , ऋषिऋण के साथ–साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। पर्यावरण में जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें सूर्य, वायु, वरूण, एवं अग्नि आदि देवताओं की प्रार्थना की गई है।[12]

प्रदूषण–पर्यावरण प्रदूषण की आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा जोर – शोर से होने लगी है। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि यह शब्द अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अचानक ही दो–चार दशक पूर्व प्रकट हुआ इसकी अवधारणा भले ही नयी लगती हो किन्तु यह तो प्रकृति के प्रारम्भ से ही विद्यमान रहा है। क्योंकि मनुष्य द्वारा श्वास – प्रश्वास और मल –मूत्र का उत्सर्जन से ही प्रदूषण आरंभ हो गया । यास्क ने निरूक्त में वस्तु या भाव के छः प्रकार गिनाये हैं। उपनिषदों में प्रदूषण का पर्याय पाप शब्द आया है।[13] यहां मिट्टी से दोष हरने की प्रार्थना की गई है। अन्यत्र तिल को भी पापनाशक माना है।[14]. इसमें स्नान करने से जैसे दैहिक मल दूर होता है। वैसे ही पवित्र आचरण एवं व्यवहार से भी लोक प्रदूषण से बचने के लिए प्रयत्नशील हो । प्रदूषण से बचने के लिए वेदिक ऋषियों ने अनेक मार्ग बताए है।

यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण – भूमि प्रदूषण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी हमारे इस यज्ञ का सेवन करें और यज्ञ से पोषण प्राप्त कर हमारा भरण –पोषण करें, क्योंकि यज्ञमान द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ वर्षकारक इन्द्र की शक्ति को बढ़ाता है और भूलोक को विविध अनाज, धन – धान्य से पुष्ट करता है।[15] प्रदूषण से भूमि फलवती नहीं होती, जिसे आचार्य सायण ने अनृत का परिणाम लिखा है। उन्होनें कहा है कि सत्य विरोधी अधर्म आचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते । यज्ञ में दी गई आहूति देवगण नहीं स्वीकारते ।[16]. यज्ञाग्नि में धूम उत्पन्न हेाता है, जिससे बादलों का निर्माण होता है, फिर वही बादल बरसात के रूप में पृथ्वी को हरा भरा करते हैं। गीता में भगवान ने इसका संकेत किया है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञात्भवति पर्जन्यो यज्ञःकर्म समुद्भवः।।[17].

यजुर्वेद में आया है कि भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करें, जिससे पृथ्वी शक्तिशाली बनेगी।[18.]

ध्वनि प्रदूषण – पर्यावरण विद् ध्वनि को अवांछित प्रदूषण मानते हैं। इसके लिए वे उर्दू शब्द शोर का प्रयोग करते हैं। जिसका अर्थ वायुमण्डल में उत्पन्न की गई अवांछित ध्वनि जिसका मानव एवं अन्य प्राणियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संस्कृत के वैयाकरणों ने इस गम्भीर चिन्तन किया है। उन्होनें सम्वृत आदि सोलह प्रकार की ध्वनि पर प्रकाश डाला है।[19.] आज प्राकृत स्त्रोतों के अतिरिक्त कृत्रिम स्त्रोत ओद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण यह समस्या विकराल होती जा रही है। उद्योग – धन्धे और मशीनें स्थल तथा वायु परिवहन के सघन तीव्र ध्वनि वाले मनोरंजन वाले एवं सामाजिक क्रिया कलापों को नियन्त्रित करना आवश्यक है।

सृष्टि के लिए विनाशकारी है प्रदूषण –

सृष्टि की विनाश प्रक्रिया पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि विनाश का मूल कारण प्रदूषण ही है, क्योंकि व्यक्त पदार्थों के गुणों में विकार उत्पन्न होने पर उनके विनष्ट होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इसे वह वेदों में प्रतिसर्ग अथवा सर्ग कहा है। उक्त विकार को ही आधुनिक भाषा में प्रदूषण कहतें हैं। वेदों की व्याख्या करते हुए वायु पुराण [20]. में महर्षि वेदव्यास ने अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा है कि इस सृष्टि के अपने स्वरूप में अधिष्ठित हो जाने पर अन्धाधुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुश्यों की क्रिया कलापों तथा अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समयपूर्व वे दोश उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्प के अन्त में आने वाली प्रलय में उत्पन्न होते हैं, जिसे यह दृश्य प्रकृतिलय की ओर अग्रसर हो । दुखद हो जाता है ऋग्वेद में भी इसी प्रकार की चिन्ता करते हुए कहते है कि पर्यावरण बनाए हुए व्यक्त पदार्थ को अतिशय भोग, तृष्णा से दूषित करता है।[21]. उसके परिणामस्वरूप पृथ्वी में अत्यधिक ताप बढ़ जाने से सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते है और सूर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर , जंगम, नदी, पर्वत ,वनस्पति आदि तीनों लोंकों को जलाने लगती है।[22.] मत्स्य पुराण में भी इसी बात को दोहराया गया है। कि प्रचण्ड सूर्य अपनी किरणों से समुद्रों को षोषित कर सम्पूर्ण नदी कूप एवं पर्वतों के जल को भी सूखा देता है और अन्त में अपनी प्रलयकालीन किरणों के द्वारा पृथ्वी का भेदन करता हुआ पाताल के जल को भी खींच लेता है। इसमें भूगर्भीय जल का स्तर निरन्तर गिरने लगता है, जिससे कुएं और नलकूप असफल होने लगते हैं।[23.] विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में पीने के जल का भीषण संकट ग्राम और नगर सब ओर दिखाई देने लगता है। इस भीषण अग्नि से वन आदि जलने लगते है। इसी प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि के विनाषक रूप का वर्णन समुचित रूप से किया गया है।[24.]

इसी प्रकार अधिक ताप उत्पन्न होने के कारण भयानक आंधियां चलने लगती है और प्रकुपित वायु के प्रकोप से विनाशकारी मेघ, सूर्य और आन्धियों की उत्पति होती है, ।[25.] जिससे वायु समुद्रों को भी सुखा देती है। भीषण जल संकट उत्पन्न होने कारण ताप अधिक बढ़ जाता है। ताप के बढ़ने से भूमि जलने लगती है। सम्पूर्ण प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो जाता है। ।[26]. अतः सभी को सावधानी पूर्वक पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

41006200 वर्ग किमी की सतह में फैली इस पृथ्वी के आकार प्रकार में कितनी विविधता है, जब मानव पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ होगा तो उसे जरूर आश्चर्य एवं अजूबा प्रतीत हुआ । कहीं पहाड़, नदियां, घाटियां व चारागाह है तो कहीं रेगिस्तान व समुद्र का विस्तार है। जहां हिमालय जैसे उच्च शिखर भी और विश्व की 16 पर्वत श्रेणियां भी जो 16 पर्वत श्रेणियां भी जो 6414 मीटर ऊंची है। अमेजन जैसी बड़ी और नील जैसी लम्बी नदी है।[27.] इस पृथ्वी पर अनेक प्रकार के पेड़–पोधे हैं, जो अपने आकार – प्रकार फूल, फलों पतों, टहनियों और गुणों के कारण सृष्टि के वैचित्र रहस्य का आभास करा देते हैं। प्राकृत एवं वनीय सम्पदाओं से हमारी पृथ्वी हरी–भरी है। प्रकृति के अपार सम्पदा हमें चारों ओर से घेरे हुए है। पृथ्वी के इस जीवित पर्यावरण को यदि एक समय भाव और संवेदनशील मन से अनुभूत किया जाए तो लगेगा कि ईश्वर ने हमें जो यह दुनिया दी है, वह उजाड़ने के लिए नहीं, बल्कि संवारने के लिए दी है। मानव यदि आत्मा से प्रकृति की चेतना का अहसास अपने अन्तःमन से जोड़कर देखने का अभ्यासी हो जाए, तो उसे एक सूत्रता का मूल मन्त्र मिल सकता है। इस विविधता से भरी पृथ्वी कर हमें राजनीतिक स्वार्थ से ऊपर उठकर समुचित दूरगामी

परिणामों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण को सन्तुलित करने का प्रयास करना चाहिए, नहीं तो पृथ्वी रहने योग्य नही रह पायेगी।

शोध संदर्भ सूची

1. शुक्ल यजुर्वेद 36/17
2. डॉ रघुवीर द्वारा लिखित कम्प्ररिहेरशव इंगलिस हिन्दी पृ0 सं0 481
3. पर्यावरण तथा प्रदूषण – अरूण कुमार रघुवंशी पृ0 सं0 41
4. ऋग्वेद 10/121/1–6
5. ऋग्वेद 10/121/1
6. ऋग्वेद 6/33/6
7. अथर्ववेद11/61/1
8. अथर्ववेद 3/11/2
9. ऋग्वेद 6/66/16
10. ऋग्वेद 10/18/2–3
11. अथर्ववेद 10/31/12 एवं 11/26/8
12. ऋग्वेद 1/148/1
13. अथर्ववेद 10/1/8
14. महा नारायणे उपनिषद 4/8
15. अथर्ववेद6/114/3
16. ऋग्वेद 1/22/13एवं8/14/4
17. श्रीमद्भगवत गीता 3/14
18. वयाकरण महाभाव्य चारूदेव शास्त्री पृ0सं0 46
19. वायु पुराण 62/14
20. ऋग्वेद 10 /86/4
21. महाभारत भीष्मपव 66/11 एवं वायु पुराण 6/41–42
22. मत्स्य पुराण 164/1–3
23. मत्स्य पुराण 164/11
24. महाभारत शल्यपर्व पुराण 66/6
25. ब्रहमपुराण 231/4
26. महाभारत शान्तिपर्व 213/4
27. हिमसुमन पत्रिका पृ0 सं04

****